प्रतिनिधि कविताएँ
रमणिका गुप्ता

संपादक

मदन कश्यप

रमणिका जी ज्यादातर कविताओं में कच्चे अमरूदों की खास कचकची गंध है—इनका 'मिलिटरी ग्रीन' कलेवर और झक् सफेद गूदा उन बूतिया बीजों के साथ कुटकुटाने का मजा ही अलग है। दोने में नमक आपके अपने जीवानुभव देंगे और रमणिका जी के बहुरंगी जीवन-संकेत!

बीच-बीच में 'Ripeneses is all' वाली परिपक्वता और रससिद्धि भी है! यह रससिद्धि रमणिकाजी की संघर्षधर्मी कविता को अनुभवों के विशाल फैलक से मिली है! और स्त्री रचनाकारों के बारे में कह सकते हैं—'पर्सनल इज पोलिटिकल' पर रमणिकाजी के यहाँ इसका विलोम सत्य है। 'पोलिटिकल इज पर्सनल'! इन दोनों ध्रुवान्तों के बीच रोशनी का एक लक्ष्मण-झूला इनकी कविता रचती हैं—पुल जो लोहे का है, लोहा जिसका स्वाद लोहार से नहीं, उस घोड़े से पूछना चाहिए, जिसके मुंह में लगाम है! लोहे का होने के बावजूद यह पुल मुलायम है! पालना झुलाता है! बचपन की याद दिलाता है, आदिम आवेगों की भी—जो बचपन से ही मुन्नी मारकर मन में सोए रहते हैं और कभी, किसी क्षण जग सकते हैं! ...हर व्यस्त व्यक्ति थोड़ा-सा मस्त होता है, थोड़ा-सा अस्त और थोड़ा-सा अस्त-व्यस्त भी! रमणिकाजी की कविताएँ हिन्दी की ऐक्टिविस्ट स्त्री कविता की पहली पीढ़ी के कई रंग पूरे ठस्से से उजागर करती हैं।

—अनामिका

प्रतिनिधि कविताएँ
रमणिका गुप्ता

कबीर की परंपरा

रमणिका गुप्ता की कविताओं से गुजरना एक ऐसे अनुभव संसार से गुजरना है, जो पढ़े-लिखे शहरी मध्य और उच्चवर्ग के लिए अजाना-अछूता ही नहीं, चौंकाने वाला भी है। रमणिका गुप्ता पिछले कोई एक दशक से दिल्ली में रह कर एक फाउण्डेशन का संचालन कर रही हैं और भारत के जनजातीय समाज तथा स्त्रियों की आवाज़ों को अपनी पत्रिका 'युद्धरत आम आदमी' के माध्यम से लगातार बुलंद कर रही हैं। परन्तु, उनके लेखन, विशेष रूप से उनकी कविता की पूंजी उनका वह राजनीतिक-सामाजिक संघर्ष है, जो उन्होंने धनबाद और हजारीबाग के पिछड़े औद्योगिक क्षेत्र में रह कर किया था। उन्होंने मजदूरों तथा ग्रामीणों, खासतौर पर आदिवासियों की लम्बी लड़ाई लड़ी थी। श्रमिक संगठनों में काम का उनका लम्बा अनुभव रहा है। 1960 के दशक में जब उनके पति वेदप्रकाश गुप्ता धनबाद में क्षेत्रीय श्रमायुक्त होकर गये थे, तो रमणिका जी उनके साथ एक गृहिणी के रूप में ही वहाँ गयी थीं, लेकिन शुरू से ही स्त्री-अधिकारों के प्रति सचेत और घर से विद्रोह करके शादी रचाने वाली पंजाब के प्रतिष्ठित बेदी परिवार की यह विद्रोहिणी लड़की बहुत दिनों तक साँकलों में कैद नहीं रह सकी। धनबाद में ही वे राजनीति और मजदूर आंदोलन से जुड़ गयीं। उनके इस राजनीतिक जीवन के साथ ही, सृजनात्मक जीवन की भी शुरुआत हुई। उनकी कविताएँ हमेशा ही उनकी लड़ाई का हिस्सा रही हैं। इसलिए भले ही उनमें कलातत्त्व की कमी हो, जीवन के तत्त्व इतने सघन और मूर्त हैं कि उनमें सहज ही संघर्ष के सौंदर्य को अभिलक्षित किया जा सकता है।

रमणिका गुप्ता ने अपनी राजनीति की शुरुआत कांग्रेस से की थी। सम्भव है, उस शुरुआत में रूमानियत और निजी महत्त्वाकांक्षा के तत्त्व भी रहे हों, उनकी प्रारम्भिक कविताओं में भी इसे किसी हद तक देखा जा सकता है। लेकिन एक बार जब वे संघर्ष में कूद पड़ीं तो पीछे मुड़ कर नहीं देखा, उनका उत्तरोत्तर विकास होता गया। स्थानीय कांग्रेसी नेताओं तथा श्रमसंगठनों में अंकुरित हो रही माफि या संस्कृति

के खिलाफ उन्होंने हल्ला बोल दिया और अंततः, उन्हें कांग्रेस छोड़ना पड़ा। इस बीच, श्रमिक आंदोलन के विवादों में खुद को फँसने से बचाने के लिए वे वेद प्रकाश गुप्ता ने अपना स्थानान्तरण कानपुर करा लिया। उसके बाद रमणिका ने अपना पूरा जीवन मजदूर आंदोलन को समर्पित कर दिया। साठ के दशक के अंतिम वर्षों में एक उपचुनाव में उम्मीदवार के रूप में वे हजारीबाग के मांडु क्षेत्र में गयीं तो वहीं की होकर रह गयीं। बाद में कांग्रेस ने उन्हें विधान परिषद में भेजा लेकिन माफिया संस्कृति को संरक्षण देने वाले नेताओं से उनके अन्तर्विरोध लगातार बढ़ते चले गये। आखिरकार वह सत्तर के दशक के अंतिम वर्षों में कर्पूरी ठाकुर के नेतृत्व वाले समाजवादी दल में आ गयीं और मांडु से ही 1980 में बिहार विधान सभा के लिए चुनी गयीं। इस बीच, मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी से उनका गहरा जुड़ाव हो चुका था। 1985 में वे औपचारिक रूप से माकपा में शामिल हो गयीं। इस लम्बी वैचारिक यात्रा का साक्ष्य उनकी कविताएँ देती हैं। 1988 में गम्भीर रूप से बीमार होने के बाद, मजदूर साथियों द्वारा ही हजारीबाग से लाकर एस्कॉर्ट में भर्ती करा दिये जाने के पूर्व तक वे लगातार खान मजदूरों तथा विस्थापित ग्रामीणों की लड़ाइयाँ लड़ती रहीं। उनका राजनीति कर्म एक अलग मूल्यांकन की माँग करता है, लेकिन उस विषय की इस संक्षिप्त चर्चा का अभिप्राय महज़ इतना है कि उनके सम्पूर्ण लेखन, विशेष रूप से कविताओं को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए।

(2)

रमणिका गुप्ता का लेखन उनके संघर्ष क्षेत्र की तरह ही विविधतापूर्ण और व्यापक है। वैचारिक लेखन और कथा साहित्य को छोड़ भी दें, तो अब तक उनके 16 कविता-संग्रह प्रकाशित हैं, जिसमें खान-खदान और आदिवासी जीवन के साथ-साथ उनके आंदोलनों और संघर्षों का भी गम्भीर दस्तावेज़ीकरण है। कहीं-कहीं उन्होंने अपनी वैचारिक ज़द्दोज़हद को भी कविता में उपस्थापित करने का उपक्रम किया है। ज़ाहिरन, ऐसे प्रयास सपाटबयानी का खतरा उठाकर ही किये जाते हैं। लेकिन रमणिका गुप्ता के बयानों में भी ताज़गी है और उनकी कविता की अन्तर्वस्तु इतनी नयी है कि उसका सामान्य विवरण भी या तो चमत्कृत करता है अथवा सीधे दिल को छूता है।

ध्यान देने की बात है कि मूलतः पंजाब की होने के बावज ूद, उन्होंने अपनी कविता में धनबाद और हजारीबाग की बोलीबानी का सृजनात्मक उपयोग किया है, जो इस क्षेत्र के मजदूर और जनजातीय समाज के प्रति उनके गहरे लगाव का द्योतक है। उनका मूल स्वर भले ही राजनीतिक है, मगर प्रेम और प्रकृति से सम्बन्धित कविताएँ भी बहुत हैं। उन्होंने दुनिया के कई प्रमुख देशों की यात्राएँ की हैं और यात्रावृत्तांत को भी अपनी कविता का उपजीव्य बनाया है। अन्तर्वस्तु के आधार पर

उनकी कविताओं को मोटे तौर पर सात खंडों में बांटा जा सकता है खान-खदान, दलित-आदिवासी, राजनीति, विचार, स्त्री-विमर्श, प्रेम और प्रकृति। परन्तु, यहाँ उनकी चयनित कविताओं को तीन खंडों में बाँटकर प्रस्तुत किया गया है। पहले खंड में वे कविताएँ हैं, जिन्हें मुखर राजनीतिक कहा जा सकता है। कवयित्री की अपनी अलग पहचान की सम्पुष्टि इन्हीं कविताओं से होती है।

पहली ही कविता एक वर्दीधारी आदिवासी की मार्मिक अभिव्यक्ति है

मैं ड्यूटी पर नहीं जाऊँगा रे मितवा
वहाँ मुझे 'काकाई देव' पर गोली चलानी पड़ेगी
सरकार नाम की प्रेतात्मा के हुक्म पर
अपनी ही औलाद को गोलियों से भून देता हूँ
मैं इस वर्दी को नहीं पहनूँगा रे मितवा **(मितवा पृ.17)**

इसी तरह आदिवासियों के जीवन तथा सोच और संघर्ष को केंद्र में रखकर उन्होंने दर्जनों कविताएँ लिखी हैं। आदिवासी प्रायः चुपचाप काम करते जाने के लिए जाने जाते हैं। वे दुःख को ही नहीं, अत्याचार को भी एक हद तक चुपचाप सहने के आदी रहे हैं, परन्तु अब उन्होंने चुप्पी तोड़ दी है। ज़ाहिर है, सबसे पहले यह विचार के स्तर पर ही टूटी है और बोलने की शुरुआत चीज़ों को पहचानने से हुई है :

अब वे बोलने लगे हैं
भूख को भोजन
प्यास को पानी
मार को लाठी कहना सीख गए हैं **(वे बोलते नहीं थे, पृ.-)**

इसी प्रकार 'मुझे तुम्हारे कालेपन पर प्यार आता है' और 'आदिवासी ने तीर क्यों चलाया?' में भी इस समुदाय के सामाजिक और राजनीतिक संघर्षों की झलक मिलती है। कवयित्री की नज़र बालश्रम पर भी है और इस दृष्टि से लिखी दो मार्मिक कविताएँ 'गांठों की मुट्ठी में बंद ज़िंदगियां' तथा 'एक मरा-मरा गुमशुदा बचपन' इस संकलन में शामिल हैं।

'जंगल का संघर्ष' और 'झारखंड संघर्ष' जैसी कुछ ऐसी कविताएँ भी हैं, जिनमें मजदूर आंदोलन की गाथा को लिपिबद्ध करने का प्रयत्न किया गया है। इनका कलात्मक मूल्य चाहे जो हो, लेकिन एक गहरा सामाजिक मूल्य तो है ही। रमणिका गुप्ता के लिए कविता उनकी लड़ाई का हिस्सा है, एक हथियार है, मन को मज़बूती देने वाला हथियार। वे इसी रूप में रचती हैं और अपनी रचना का अपनी राजनीति में इस्तेमाल भी करती हैं। रघुवीर सहाय ने कविता की शक्ति और सीमा को रेखांकित

करते हुए अपनी एक कविता में लिखा है 'न टूटे सत्ता का तिलिस्म/मेरे अंदर एक कायर तो टूटेगा।' रमणिका गुप्ता की ये कविताएँ इस कथन की पुष्टि करती हैं। वे कविता को संघर्ष के दौरान खोयी हुई अपनी ऊर्जा की पुनर्प्राप्ति का माध्यम बनाती हैं और कभी-कभी उन राजनीतिक विसंगतियों और विडम्बनाओं पर भी गहरी चोट करती हैं, जिनका साक्षात्कार सहज रूप से संघर्ष के दौरान होता है। इस दृष्टि से 'बहस', 'दरवाजा बंद है' और 'बहस अंदर जारी है' विशेष उल्लेखनीय है, जो एक ही घटना पर आधारित शृंखलाबद्ध कविताएँ हैं।

मजदूरों के संघर्षों के चित्रण के साथ-साथ वे लगातार कर्मकांडों और धार्मिक पाखंडों पर भी चोट करती हैं। ईश्वर की विडम्बनाओं को भी साफ शब्दों में सामने रखती हैं। उनकी वैचारिक कविताएँ उन स्थलों पर जरूर कमज़ोर होती है, जहाँ अनुभव के तत्त्व कम पड़ते हैं, परन्तु ऐसे स्थल बहुत कम हैं। झारखंडी अस्मिता के संघर्ष के साथ-साथ औद्योगिक मजदूरों का राजनीतिक संघर्ष हिन्दी कविता के लिए बहुत ही नया और अनोखा विषय है। अबतक तीसरा सप्तक के कवि मदन वात्स्यायन के अलावा अन्य किसी भी हिन्दी के कवि ने इस क्षेत्र को अपनी रचना में जगह नहीं दी है। इस दृष्टि से भी रमणिका गुप्ता की इन कविताओं का महत्त्व है। उन्होंने सबसे प्राथमिक उद्योग कोयला खदान की कठिनाइयों और विसंगतियों के बीच जीवन की रूमानियत को भी पकड़ने की कोशिश की है और इस क्रम में स्थानीय बोलीबानी का सुन्दर उपयोग किया है। 'मैं कामिन कचनार हूँ' तथा 'मैं कमल की नाल हो गयी' इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है। लोकभाषा के प्रयोग की दृष्टि से 'मैं अवध सरदार हूँ' और 'कोलियरी का आख्यान जान लो' भी ध्यान खींचती हैं। एक लम्बी कविता 'मजदूरायण' भी है, जिसकी आगे चर्चा करेंगे।

दूसरे खंड में प्रकृति, प्रेम और स्त्री-विमर्श की उनकी कविताओं को रखा गया है। इस क्षेत्र में भी उनका लेखन बहुत विपुल है, परन्तु इस प्रतिनिधि संग्रह की कविताओं को देखते हुए बानगी के बतौर कुछ कविताओं को ही इसमें शामिल किया जा सका है। जैसा कि ऊपर संकेत किया गया, उन्होंने दुनिया के कई प्रमुख देशों का भ्रमण तो किया ही है अपने देश के भीतर भी लम्बी-लम्बी यात्राएँ की हैं और अक्सर उनके वृत्तांत कविता में दर्ज किये हैं। उनके ऐसे यात्रावृत्तांतों की खूबी यह है कि वे अक्सर प्रकृति के गहरे अवलोकन की ओर अग्रसर हो जाते हैं और इस तरह हर बार सौंदर्य का एक नया द्वार खोल देते हैं। स्त्री विमर्श उनके वैचारिक और रचनात्मक संघर्ष का एक जरूरी हिस्सा रहा है। उनकी प्रेम कविताएँ भी बहुधा स्त्री-विमर्श में अंतरित हो जाती हैं, क्योंकि उनकी नज़र में स्त्री की मुक्ति और प्रेम, दो अलग-अलग चीजें नहीं हैं। वे जहाँ इनके अन्तर्संबंधों को उद्घाटित करती हैं, बेहद मौलिक और कलात्मक हो जाती हैं। विवरण की

सहजता में सौंदर्य पैदा करना आसान नहीं होता। इसके लिए भाषा का जो तनाव रचना पड़ता है, वह सामान्यतया बहुत कठिन है। हालांकि रमणिका जी भाषा को लेकर उस तरह सचेत नहीं हैं, जिस तरह अपने विचारों को लेकर हैं। फिर भी उन्होंने झारखंड की लोकभाषा खोरठा के सृजनात्मक उपयोग से प्रेम और प्रकृति की अपनी कुछ कविताओं को उल्लेखनीय कलात्मक ऊँचाई दी है। वे समुद्र को पेकची के पत्ते-सा डोलता हुआ देखती हैं :

पेकची के पत्ते-सा
डोले है सागर
मन मोरा घुरी-घुरी
होले है पागल
पकल महुआ की
गंध है 'मता' रही
मोर बगिया की याद मोहे आ रही
मोर 'सहिया' की याद मोहे आ रही। **(पेकची के पत्ते सा : पृष्ठ-)**

पता नहीं हिन्दी में प्रेम और क्रांति को परस्पर विरोधी मान लेने वाली अवधारणा कब और कहाँ से आयी थी। बहुत सम्भव है कि इसके पीछे सामंती नैतिकता का कोई दबाव रहा हो, जिसमें पर्दे के पीछे सारी अनैतिकता जायज़ है। ख़ैर, यह बहस अब इसलिए अप्रासंगिक है, क्योंकि अब स्थिति बदल चुकी है और गहरे सामाजिक सरोकारों वाले कवि भी बेधड़क प्रेम कविताएँ लिख रहे हैं। इससे न केवल प्रेम कविताओं की संख्यात्मक वृद्धि हो रही है, बल्कि उसमें जीवन की तमाम हलचलों को भी जगह मिल रही है और हिंस्र समय के विरुद्ध प्रेम भी एक प्रतिरोध की तरह उपस्थित हो रहा है। रमणिका गुप्ता की प्रेम कविताओं को भी इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। प्रेम और स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को लेकर भी उनके विचार नितांत खुले हुए और काफी हद तक मौलिक हैं। वे मध्यवर्गीय दोहरेपन की शिकार कभी नहीं हुईं। उनमें तस्लीमा नसरीन की तरह सच कहने का साहस है, मगर इस साहस को बाज़ारू बना देने की चालाकी कतई नहीं। हिन्दी के पिछड़े हुए समाज में यह एक दुर्लभ स्थिति है। प्रेम कविताओं के अपने संग्रह 'पातियां प्रेम की' की भूमिका में कवयित्री ने ऐनी मेरी लिंडवर्ग की एक छोटी-सी कविता उद्धृत की है: 'मैं जिससे प्रेम करती हूँ/ चाहती हूँ/ कि/ वह मुक्त रहे/ यहाँ तक कि/ मुझसे भी।' यह एक तरह से रमणिका गुप्ता की प्रेम कविताओं का भी घोषणापत्र है। इस प्रकार, प्रेम मुक्ति का एक माध्यम बन जाता है, जबकि कई नारीवादी लेखिकाएँ इसके विरुद्ध भी हैं।

लोकभाषा और लोकसंस्कृति के गहरे संस्पर्श के चलते भी प्रेम उनके यहाँ

व्यापक अर्थ पा लेता है। रमणिका गुप्ता की ये कविताएँ अपवर्जी प्रेम की कविताएँ नहीं हैं, उसमें जीवन का संघर्ष भी अन्तर्निहित है। फैज़ से इतर रमणिका 'मुहब्बत के ग़म में तमाम ग़मों को और 'वस्ल की राहत' में तमाम राहतों को शामिल कर लेती हैं। यह एक तरह से प्रेम का समाजीकरण है, जिसे नये अर्थों में उदात्तीकरण भी कहा जा सकता है।

स्त्री मुक्ति की उनकी अवधारणा बिल्कुल मौलिक है, जिस पर न तो पुरुष-सत्ता की 'हेज़िमनी' है, न ही कोई सामानांतर नैतिक लोक खड़ा करने का पाखंड। वे प्रेम के समर्पण को भी मुक्ति से जोड़ कर देखती हैं, बशर्ते उससे स्त्री के अधिकारों का हनन नहीं हो। रमणिका गुप्ता एक बेहद सजग रचनाकार हैं और मार्क्सवाद को लेकर आग्रहशील भी। परन्तु विचारधारा का इस्तेमाल वे जड़ता तोड़ने के लिए करती हैं, नयी जड़ता गढ़ने के लिए नहीं। इसीलिए दलित, आदिवासी और बहुलतावादी संस्कृति के मसले पर वे वामपंथी संकीर्णताओं पर भी चोट करती हैं। तभी तो वे नये विमर्शों को सामने ला पाती हैं। 'मैंने तोड़ी है सदियों से सीखी चुप्पी' और 'मैं आज़ाद हुई हूँ' जैसी कविताएँ उनकी सोच को सही ढंग से उजागर करती हैं। इसी क्रम में 'बहस' तथा 'अंदर बहस जारी है' जैसी कविताओं को भी देखा जा सकता है, जिनकी चर्चा ऊपर की गयी है।

तीसरे और अंतिम खंड में तीन लम्बी कविताएँ हैं 'केदला की पहली हड़ताल', 'प्रकृति युद्धरत है' और 'मजदूरायण'। 'केदला की पहली हड़ताल' में एक कोलियरी में ठेकेदारी प्रथा के खिलाफ मजदूरों के संघर्ष का विवरण है। यह 'झारखंड-संघर्ष' की ही अगली कड़ी है। ये कविताएँ मौत को सम्बोधित करके लिखी गयी हैं। गम्भीर रूप से बीमार होने के बाद, कवयित्री ने सोचना शुरू किया कि इसके पहले मौत कब-कब उनके करीब आयी। उसे याद आया कि वह एक बार तब भी आयी थी, जब केदला की हड़ताल के दौरान ठेकेदार के लठैतों ने उसकी कार पर हमला किया था। कोयलांचल के मजदूरों के संघर्ष का बहुत ही भयावह चित्र इस कविता में उकेरा गया है। कविता हमें एक ऐसे यथार्थ से परिचित कराती है, जिसे इसके पहले हिन्दी के लिखित साहित्य में किसी रूप में दर्ज नहीं किया गया था।

'प्रकृति युद्धरत है' कविता भी इस मायने में अनूठी है कि इसमें प्रकृति के संघर्ष को आम आदमी के संघर्ष से जोड़ कर देखने का प्रयत्न किया गया है।

अंतिम कविता 'मजदूरायण' कई दृष्टि से हिन्दी की एक उल्लेखनीय कविता है। इसमें साम्प्रदायीकरण के विरुद्ध रामकथा का मजदूर के दृष्टिकोण से रचा गया एक नया विमर्श तो है ही, पंडवानी की तरह की इसकी नाटकीय शैली भी आकर्षित करती है। सबसे अधिक रेखांकन योग्य है इसकी भाषा। कवयित्री ने छत्तीसगढ़ी का बहुत ही सृजनात्मक प्रयोग किया है, जो कोलियरी क्षेत्र में प्रतिरोध का एक बड़ा प्रतीक भी है।

धनबाद-हजारीबाग के कोयलांचल में बड़ी संख्या में छत्तीसगढ़ के मजदूर काम करते हैं। खदानों के कठिन से कठिन काम में इन्हें लगाया जाता है। हर जगह इनका अपना 'धौड़ा' होता है और ये अपनी बोली-बानी तथा आन-बान के साथ एकजुट होकर रहते हैं। चूंकि शुरुआती दौर में ज्यादातर मजदूर छत्तीसगढ़ के विलासपुर जनपद से आये थे, इसलिए यहाँ सभी छत्तीसगढ़ियों को उसी तरह विलासपुरिया कहा जाता है, जिस तरह सभी दक्षिण भारतीयों को मद्रासी। कवयित्री ने इस कविता में इन्हीं विलासपुरिया मजदूरों की भाषा और भंगिमा को पकड़ने की कोशिश की है

सब गुरुजन
सब भाई मन
लिख दो मोर पेट पर
रामायण का एक ऐसन दोहा
एक ऐसन चौपाई
जे कहे
सदा सुखी रहूँ मैं
खुश रहूँ
कभी भूखा नहीं रहूँ
मैं रामायण को पूजत हूँ
भाई मन
पर पढ़त नाही हूँ **(मजदूरायण : पृष्ठ-)**

इसी तरह की एक कविता 'कोलियरी का आख्यान जान लो' भी है, जिसकी चर्चा पहले की गयी है। यह भाषा की बिल्कुल नई प्रविधि है, जिस पर विचार किया जाना चाहिए।

(3)

हिन्दी साहित्य ही नहीं, हिन्दी समाज पर भी जनपदीय संस्कृति का गहरा प्रभाव है। कहा जा सकता है, भले ही डॉ. रामविलास शर्मा ने हिन्दी जाति (क ौम) की एक सुविस्तारित अवधारणा रखी हो, हिन्दी की क ौमियत अभी बनी नहीं है। इसका एक प्रमुख कारण हिन्दी की जनपदीय संस्कृति और बोलीबानी का मज़बूत होना है। पर्याप्त संख्या में मध्यवर्ग का विकास नहीं होना भी एक कारण हो सकता है। यह अलग से विचारणीय है। बहरहाल, यह अच्छी बात है कि हिन्दी कविता जनपदीय संस्कृति और बोलीबानी को समेटती चल रही है और यह भाषा को समृद्ध करने के साथ-साथ राज और बाजार द्वारा विकसित की जा रही अभिव्यंजना की शैलियों का प्रतिपक्ष भी रच रही है।

हिन्दी का अहंग्रस्त मध्यवर्ग जनपदीय कविता की उपेक्षा करता रहा है। इसी को ध्यान में रख कर इस लेखक ने अब से कोई डेढ़ दशक पहले कविता का जनपदीय इतिहास लिखने की तरफ दारी की थी। परन्तु हिन्दी के कुछ ऐसे भी इलाके हैं, जिन्हें कायदे से किसी प्राचीन जनपद और उसकी बोलीबानी से नहीं जोड़ा जा सकता। ये पहाड़ और जंगल के इलाके हैं, जहाँ की संस्कृति के निर्माण में आदिवासियों और नृजातीय समूहों की भूमिका अधिक महत्त्वपूर्ण रही है। यहाँ की भाषा ही नहीं, जीवनशैली, पारिस्थितिकी और पर्यावरण भी मध्यदेश के जनपदों के उस समुच्चय से भिन्न है, जिसे हिन्दी पट्टी कहते हैं। बल्कि, इनके भीतर भी भाषा के स्तर पर जनपदीय बंटवारा देखा जा सकता है, लेकिन उनमें सांस्कृतिक एकता के तत्त्व गहरे रूप से मौजू द है। हिमाचल, झारखंड और छत्तीसगढ़ तीन ऐसे राज्य हैं, जिनकी सांस्कृतिक पारिस्थितिकी को स्वर देने वाली कविता को अलग से पहचानने की ज़रूरत है। उत्तराखंड पहाड़ी राज्य होने के बावज ूद, इनसे अलग है क्योंकि वहाँ मध्यवर्ग का अभ्युदय हिन्दी के किसी भी क्षेत्र से अधिक हुआ है। वैसे झारखंड, छत्तीसगढ़ और हिमाचल में भी मध्यवर्ग का विकास हुआ है, मगर वहाँ की संस्कृति पर इसका प्रभाव निर्णायक नहीं है। वहाँ कविता की एक ऐसी धारा है, जिसे फिलहाल सबाल्टर्न कहा जा सकता है। हम इसकी सैद्धान्तिक बहसों को यहाँ नहीं उठाना चाहते, बल्कि इसके स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए कुछ कवियों की चुनी हुई कविताओं को प्रस्तुत करना चाहते हैं। अपनी सीमाओं को देखते हुए हम केवल झारखंड क्षेत्र के पांच कवियों को प्रस्तुत करेंगे। इसकी पहली कड़ी के रूप में रमणिका गुप्ता की चुनी हुई कविताएँ पाठकों के सामने हैं। आगे हम रामदयाल मुंडा, वी.पी. केसरी, खीरूराम विद्रोही और ग्रेस कुजूर की चुनी हुई कविताओं को संकलित करने का प्रयत्न करेंगे।

हिन्दी में यह ऐसा संकटग्रस्त समय है, जब पांडित्य को प्रगतिशीलता का पर्याय बनाकर, केशव और कबीर की परम्पराओं को गड्डमड्ड करने की कोशिश की जा रही है। ऐसे में कबीर की परम्परा को अलग से रेखांकित किया जाना जरूरी है। हमारे इस उपक्रम के पीछे एक उद्देश्य यह भी है।

मदन कश्यप
ए-22, शिक्षा निकेतन, सेक्टर-5,
वसुंधरा, ग़ाजियाबाद-201012
मोबाइल : 9213255938

क्रम

1.	मितवा	17
2.	वे बोलते नहीं थे	19
3.	मुझे तुम्हारे कालेपन पर प्यार आता है	23
4.	एक शब्द	26
5.	आदिवासी ने तीर क्यों चलाया?	33
6.	मैं कमल की नाल हो गई	38
7.	मैं अवध सरदार हूँ	40
8.	कोलियरी का आख्यान जान लो	42
9.	मैं जिऊंगी	44
10.	मैं कामिन कचनार हूं	50
11.	व्यवस्था	53
12.	बगुलों की कतार	55
13.	स्पार्टकस	57
14.	भगवान तो पहले ही ग्लोबलाइज़्ड था	64
15.	मैं	66
16.	किसी ईश्वर की माया नहीं	70
17.	खुदा	72
18.	छेनी की झांझर छनकी	75
19.	गद्य से उभरती भाषा बदलाव लाई	82

20.	टुकड़ा-टुकड़ा आदमी	86
21.	छह दिसम्बर : कुछ चित्र	91
22.	स्तर	95
23.	चाहे कितना ही दावा करे हीगल	96
24.	गाँठों की मुट्ठी में बन्द जिन्दगियाँ	97
25.	एक मरा-मरा गुमशुदा बचपन	99
26.	चुप हो गई हवा	102
27.	सूरज एक जानदार तमाचा	104
28.	एक युधिष्ठिर मैक्सिको में	106
29.	भय से भगवान	109
30.	काफिले	114
31.	फिर चुप हो गयीं शताब्दियां	116
32.	बहस	119
33.	दरवाज़ा बन्द है	120
34.	बहस अन्दर जारी है	121
35.	जंगल का संघर्ष	123
36.	झारखंड संघर्ष	125
37.	केदला की पहली हड़ताल	131
38.	प्रकृति युद्धरत है	138
39.	मजदूरायण	148
40.	चेरापूंजी के नवरंग	162
41.	गोपद	164
42.	एल्पस के वक्ष पर	165
43.	लेह के पहाड़	167
44.	पीठ पर बच्चे	173
45.	आइजल	174
46.	दीमापुर से इम्फाल : एक सहयात्रा	176

47. गुमनाम स्टेशन 180
48. 'खजुराहो खजुराहो खजुराहो' 183
49. चांदनी 186
50. एनो प्रश्नानिया 188
51. कोई सदियों से कोई क्षणों में 189
52. तुमने अपनी ईजल समेट ली 192
53. बलात्कार 197
54. अकेलेपन के चमगादड़ 198
55. कतार से अलग 200
56. सन्दक-फू 202
57. प्लेटफार्म पर 206
58. बयार 208
59. हंस की कतार 209
60. तुम साथ देते तो 210
61. पेकची के पत्ते-सा 213
62. तुम्हें पाना 215
63. फेनिक्स-वे 216
64. न माना 219
65. मैं तो मृग-तृष्णा हूँ 221
66. एक सेतु 225
67. इतनी जिजीविषा 226
68. तुम्हारा समर्पण 228
69. मेरी उम्र के वीरानों में चहक उठा पक्षी 230
70. तुम पास होते तो 231
71. याद 232
72. करिया पहाड़ 233
73. तू घर नाय एलेय 235

74.	'एकले' ही रहे हम पर जिन्दगी भर	237
75.	रात एक युकलिप्टस	239
76.	कैसे गुनगुनाऊं	242
77.	आकाश के गीत	245
78.	अधलेटी	246
79.	जर्जर गाड़ी	247
80.	किसको दूं आवाज़	248
81.	प्यार के दो गीत चुप-चुप	250
82.	महक	253
83.	खूंटे	255
84.	अर्द्ध-नारीश्वर	257
85.	कीलें	260
86.	आदम की पसली	261
87.	बंदीगृह	265
88.	तब तुम क्या कर लोगे	269
89.	अभिजात और औरत	270
90.	बदलाव की कड़ी नहीं	274
91.	मैंने तोड़ी है सदियों से सीखी चुप्पी	277
92.	मैं आजाद हुई हूँ	278

मितवा

मैं ड्यूटी पर नहीं जाऊँगा रे मितवा
मैं ड्यूटी पर नहीं जाऊँगा!
वहाँ मुझे 'काकाई देव'[1] पर गोली चलानी पड़ेगी
आज जब वह वोट के विरोध में
मेरे कैम्प के पास आएगा

मैं आज काम पर नहीं जाऊँगा रे साथी
मैं आज काम पर नहीं जाऊँगा
वहाँ मुझे सड़कों पर जाती
बसों में चढ़ती
बाजार करती सीतामाय, योगमाया, गंगा, पारू को
बेंतों से पीटना पड़ेगा!

मैं इस वर्दी को नहीं पहनूँगा रे मीता
मैं इस वर्दी को नहीं पहनूंगा!
मुझे इसमें कफ न नज र आता है
इसे ढाँप कर मेरी रूह
दफना दी गई है
इसे पहन कर
मैं एक ज़िन्दा लाश बन

सरकार नाम की प्रेतात्मा के हुक़्म पर
अंधा, बहरा, गूँगा बन
अपनी ही औलाद को गोलियों से भून देता हूँ!

मैं इस वर्दी को नहीं पहनूँगा रे मीता
मैं ड्यूटी पर नहीं जाऊँगा रे मितवा
नहीं साथी, नहीं मैं काम पर नहीं जाऊँगा!

---

1. ककाई देव : पिता का बड़ा भाई